अखण्ड ज्योति

(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

वार्षिक मूल्य २)   सम्पादक—श्रीराम शर्मा आचार्य।   एक अंक ≡

वर्ष ६   मथुरा, १ नवम्बर सन् १९४५ ई०   ग्यारहवाँ अंक

सत्यता में अकूत बल भरा हुआ है।

आप सदा सत्य बोलिए, अपने विचारों को सत्यता से परिपूर्ण बनाइए और आचरण में सत्यता बरतिए। अपने आपको सत्यता से सराबोर रखिए ऐसा करने से आपको एक ऐसा प्रचण्ड बल प्राप्त होगा, जो संसार के समस्त बलों से अधिक होगा। कानफ्यूशियश कहा करते थे कि सत्य में हजार हाथियों की बराबर बल है परन्तु वस्तुतः सत्य में अपार बल है उसकी समता भौतिक सृष्टि के किसी बल के साथ नहीं की जा सकती।

जो अपनी आत्मा के सामने सच्चा है। जो अपनी अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार आचरण करता है। बनावट, धोखेबाजी, चालाकी को तिलांजलि देकर जिसने ईमानदारी को अपनी नीति बना लिया है वह इस दुनियां का सबसे बड़ा बुद्धिमान व्यक्ति है। क्यों कि सदाचरण के कारण मनुष्य शक्ति का पुंज बन जाता है। उसे कोई डरा नहीं सकता, उसे किसी का डर नहीं लगता। जब कि झूठे और मिथ्याचारी लोगों का कलेजा बात बात में सशंकित रहता है और पीपल के पत्ते की तरह कांपता रहता है।

धन बल, जन बल, तन बल, मन बल आदि अनेकों प्रकार के बल इस संसार में होते हैं परन्तु सत्य का बल सब से अधिक है। सच्चा पुरुष इतना शक्ति शाली होता है कि उसके आगे मनुष्यों को ही नहीं—देवताओं को ही नहीं—परमात्मा को भी झुकना पड़ता है।

शारीरिक दृष्टि से पशुओं से भी बहुत गये बीते मानवी प्राणी को सृष्टि का मुकटमणि बनाने वाला "मन" तत्व ही है। इस मनोबल की महत्ता के कारण ही वह परमात्मा का राजकुमार कहलाता है। मन के द्वारा ही मनुष्य स्वर्ग सुख का आनन्द प्राप्त करता है और उसी के कारण दुखों की नारकीय अग्नि में झुलसता है। इस महान् "मनः तत्व" की अद्भुत, आश्चर्यजनक, विचित्र, एवं रहस्य मय लीलाओं को जानना, जीवन को सुविधा पूर्वक जीने के लिए अत्यन्त ही आवश्यक है। इस महान् ज्ञान के—मनोविज्ञान शास्त्र के—प्रकाण्ड पण्डित—

प्रो० रामचरण जी महेन्द्र, एम. ए. डी. लिट्, पी. एच. डी. डी. डी,

के सम्पादकत्व में—प्रायः सबका सब उन्हीं की लेखनी से लिखा जाकर

अखण्ड ज्योति का-'मनोविज्ञान अंक'

ता० १ जनवरी सन् १९४६ को प्रकाशित होगा। पेपर कन्ट्रोल कानून के अनुसार अखंड-ज्योति को बहुत थोड़ा कागज मिलता है। इसलिए पृष्ठ संख्या साधारण अंक से दूनी के करीब ही होगी। पर इससे भी पाठ्य सामिग्री बहुत अधिक है। इसलिए १ जनवरी का अंक मनोविज्ञान अंक का पूर्वार्ध और १ फरवरी का अंक उत्तरार्ध होगा। दो अंकों में वह सामिग्री पूरी होगी। सामिग्री कितनी महत्वपूर्ण होगी इसका कुछ परिचय नीचे की विषय सूची से प्राप्त किया जा सकता है।

१ जनवरी सन् ४६ के मनोविज्ञान अंक के पूर्वार्ध में रहने वाले कुछ लेखों की सूची।

(१) मनोविज्ञान का संदेश
(२) नवजीवन का पथ प्रदर्शक मनोविज्ञान
(३) हमारा अद्भुत मन, उसका स्वभाव आदतें
(४) मनकी संचालक-आत्मा
(५) मानसिक शक्तियों की अभिवृद्धि के उपाय
(६) मनोजय की समस्या
(७) मनोविज्ञान की दृष्टि से, स्वर्ग, नरक, मृत्यु, परलोक
(८) जनता की मनोवृत्तियों से लाभ उठाइए
(९) मनोविज्ञान के कुछ विचित्र प्रश्न
(१०) दूसरे के मनोभावों को समझिए
(११) दाम्पत्ति जीवन का मनोविज्ञान
(१२) नन्हें शिशुओं की प्रवृत्ति का अध्ययन
(१३) धार्मिक सिद्धान्तों पर विश्वास क्यों करें।
(१४) मनुष्य का ध्यान किन नियमों पर कार्य करता है
(१५) कल्पना साक्षात् कल्पलता है।
(१६) स्वभाव बदलना
(१७) दैनिक व्यवहार में सफलता प्राप्त करने के उपाय

१ फरवरी ४६ के 'उत्तरार्ध' में रहने वाले लेख।

(१) मनोविज्ञान द्वारा चिकित्सा पद्धतिका विकास
(२) विश्वास से चिकित्सा
(३) पागलपन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और निवारण
(४) रोग और व्याधि के मनोवैज्ञानिक पहलू
(५) मानसिक उलझनों से मुक्ति
(६) मनः स्थिति का भोजन पर प्रभाव
(७) भोजन के समय के विचार
(८) मनोभावों से स्वास्थ का संबंध
(९) मनोविश्लेषण पद्धति

लेख एक से एक अमूल्य हैं। विशेषांक की पृष्ठ संख्या थोड़ी ही रहते हुए भी उसमें 'गागर में सागर" भरा रहेगा।

सत्य
प्रेम
न्याय

अखण्ड ज्योति
-मथुरा-

१ नवम्बर सन् १९४५ ई०

"पुरोहित" के जागरण की-आवश्यकता।

मनुष्य में दो तंत्र प्रधान हैं, एक विवेक, दूसरा 'बल'। बल अनेक प्रकार के हैं, शरीर बल, चातुर्य बल, धन बल, संघ बल आदि। इन बलों द्वारा शासन, उत्पादन और निर्माण कार्य होता है, इन्हीं के द्वारा सम्पत्ति एवं ऐश आराम के साधन उपलब्ध होते हैं। विवेक द्वारा इन सब बलों को सम्पादन करने की प्रेरणा मिलती है, उपाय का अवलम्बन मिलता है, एवं बल द्वारा प्राप्त सामिग्री के उपयोग तथा सुरक्षा की व्यवस्था होती है।

मस्तिष्क बल और विचार बल में थोड़ा अन्तर है, उसे भी हमें समझ लेना चाहिये। मस्तिष्क बलका शरीर बल से संबंध है। विद्याध्ययन, व्यापारिक कुशलता, किसी कार्य व्यवस्था को निर्धारित प्रणाली के अनुसार चलाना, यह सब मस्तिष्क बल का काम है। वकील, डाक्टर, व्यापारी, कारीगर, कलाकार आदि का काम इसी के आधार पर चलता है। यह बल शरीर की आवश्यकता और इच्छा की पूर्ति के कारण उत्पन्न होता और बढ़ता है। परन्तु विवेक बल आत्मा से संबंधित है, आध्यात्मिक आवश्यकता, इच्छा और प्रेरणा के अनुसार विवेक जागृत होता है। उचित अनुचित का भेदभाव यह विवेक ही करता है।

मस्तिष्क बल शरीर जन्य होने के कारण उसकी नीति शारीरिक हित साधन की होती है। इन्द्रिय सुखों को प्रधानता देता हुआ वह शरीर को समृद्ध एवं ऐश्वर्यवान बनाने का प्रयत्न करता है। अपने इस दृष्टिकोण के आगे वह उचित अनुचित का भेद भाव करने में बहुत दूर तक नहीं जाता। जैसे भी हो वैसे भोग ऐश्वर्य इकट्ठा करने की धुन में प्रायः लोग कर्तव्य अकर्तव्य का ध्यान भूल जाते हैं, अनुचित रीति से भी स्वार्थ साधन करते हैं।

विवेक इससे सर्वथा भिन्न है। देखने में 'विवेक' भी मस्तिष्क बल की ही श्रेणी का प्रतीत होता है पर वस्तुतः वह उसके सर्वथा भिन्न है। विवेक आत्मा की पुकार है, आत्मिक स्वार्थ का वह पोषक है। अन्तःकरण में से सत्य, प्रेम, न्याय, त्याग, उदारता, सेवा, एवं परमार्थ की जो भावनाऐं उठती हैं उनका वह पोषण करता है। सत तत्वों के रमण में उसे आनन्द आता है। जैसे शरीर की भूख बुझाना मस्तिष्क बल का प्रयोजन होता है वैसे ही आत्मा की भूख बुझाने में 'विवेक' प्रवृत्त रहता है। काम और अहंकार की पूर्ति में बलशाली लोग सुख अनुभव करते हैं पर उससे अनेकों गुना आनन्द-परमानन्द-विवेकवान् को प्राप्त होता है।

बल द्वारा सम्पत्ति और भोग सामिग्री उपार्जित होती है, परन्तु इस उपार्जन का तरीका इतना संकुचित और स्वार्थमय होता है कि उसकी धुन में मनुष्य धर्म अधर्म की परवा नहीं करता। इसलिए केवल बल द्वारा उत्पन्न की हुई सम्पत्ति कलह और क्लेश उत्पन्न करने वाली, दुखदायक एवं परिणाम में विषके समान होती है। ऐसी सम्पत्ति का

उपार्जन संसार में अशान्ति, युद्ध, शोषण, उत्पीड़न एवं प्रतिहिंसा की नारकीय अग्नि को प्रज्वलित करने में घृत का काम करता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए विवेक बल का शरीर बल पर मस्तिष्क बल पर नियंत्रण कायम करना पड़ता है।

बल के ऊपर विवेक का नियन्त्रण कायम रहना अत्यन्त आवश्यक है, बिना इसके संसार में सुख शान्ति कायम नहीं रह सकती। बल अंधा है और विवेक पंगा है। केवल बल की प्रधानता रहे तो उससे अनर्थ, अत्याचार एवं पाप की उत्पत्ति होगी, बल के अभिमान में मनुष्य अंधा हो जाता है। विवेक नेत्र स्वरूप है वह सत्पथ का प्रदर्शन करता है किन्तु अकेला विवेक क्रिया रहित हो जाता है, अनेकों एकान्तवासी विवेकशील विद्वान एक कोने में पड़े अपनी निरुपयोगिता सिद्ध करते रहते हैं। जब विवेक और बल दोनों का सामञ्जस्य हो जाता है तो उसी प्रकार सब व्यवस्था ठीक हो जाती है जैसे एक बार अंधे की पीठ पर पंगा आदमी बैठ गया था और वे दोनों आपसी सहयोग के कारण जलते हुए गांव में से बचकर बाहर निकल गये थे। यदि दोनों सहयोग न करते तो दोनों का ही जल मरना निश्चित था।

धर्मशास्त्रों ने बल के ऊपर विवेक का शासन स्थापित किया है। भौतिक जगत में भी यही प्रथा और परिपाटी कायम की गई है। कला कौशल-बल, धन बल और शरीर बल इन तीनों बलों के प्रतिनिधि स्वरूप शूद्र, वैश्य एवं क्षत्रिय पर विवेक के प्रतिनिधि ब्राह्मण का शासन कायम किया गया है। हम प्राचीन इतिहास में देखते हैं कि हर एक राजा की शासन प्रणाली राजगुरु के आदेशानुसार चलती थी। तीनों वर्णों का पथ प्रदर्शन ब्राह्मण करते थे।

एतरेय ब्राह्मण ७-४-८ में एक श्रुति आती है— "अर्धातमोहवा एष क्षत्रियस्य यत्पुरोहितः।" अर्थात्—क्षत्रिय का आधा आत्मा पुरोहित है। पुरोहित के अभाव में क्षत्रिय आधा आत्मा मात्र है। हम देखते हैं कि जनता के आन्दोलनों का समुचित लाभ प्राप्त होना नेताओं की सुयोग्यता पर निर्भर है। विवेकशील सुयोग्य नेताओं के नेतृत्व में अल्प जन बल से भी महत्व पूर्ण सफलता मिल जाती है। नेपोलियन के पास थोड़े से सिपाही थे, पर वह अपने बुद्धि कौशल द्वारा इस थोड़ी सी शक्ति से ही महान् सफलतायें प्राप्त करने में समर्थ हुआ।

जो विवेकवान् व्यक्ति पथ प्रदर्शन एवं नेतृत्व कर सकने योग्य क्षमता रखते हैं उन पुरोहितों का उत्तर दायित्व महान् है। एतरेय ब्राह्मण के ८-५-२ में ऐसे पुरोहितों को 'राष्ट्र गोप' अर्थात् राष्ट्र की रक्षा करने वाला कहा है। यदि देश समाज एवं व्यक्तियों का बल अनुचित दिशा में प्रवृत्त होता था तो उसका दोष पुरोहितों पर पड़ता था। ताण्ड्य ब्राह्मण के १३-३-१२ में एक कथा आती है कि इच्छ्वाकुवंशीय अरुण नामक एक राजा की अहंकारिता और उद्दण्डता सीमा से बाहर बढ़गई एक बार उस राजा के लापरवाही से रथ चलाने के कारण एक व्यक्ति को चोट लग गई। वह व्यक्ति अरुण के पुरोहित 'वृश' के पास गया और उनकी भर्त्सना करते हुए कहा—आपने राजा को उचित शिक्षा नहीं दी है। आपने अपने गौर वास्पद पुरोहित पद को कर्तव्य का भलीभांति पालन नहीं किया है। यदि किया होता तो राजा इस प्रकार का आचरण न करता उस व्यक्ति के यह वचन सुनकर 'वृश' बहुत लज्जित हुए। उनसे कुछ कहते न बन पड़ा उन्होंने उस व्यक्ति को अपने आश्रम में रखा और जब तक उसकी चोट अच्छी न होगई तब तक उसकी चिकित्सा की।

उपरोक्त कथा इस सत्य को प्रदर्शित करती है कि राज्य के प्रति पुरोहित का कितना उत्तर दायित्व है। बल को उचित दिशा में प्रयोजित करने का

'विवेक' की कितनी बड़ी जिम्मेदारी है । आज पुरोहित तत्व और राज्य तत्व दो प्रथक दिशाओं में चल रहे हैं, एक ने दूसरे का सहयोग कम कर दिया है फल स्वरूप हमारी राजनीतिक, सामाजिक. आर्थिक और शारीरिक सुव्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो रही है। जब तक पुरोहित तत्व अपने उचित स्थान को ग्रहण न करेगा तब तक हमारे वाह्य और भीतरी जीवन में शान्ति स्थापित भी न होगी। विवेक का-विवेक का प्रतिनिधियों का-शरीर राष्ट्र और समाज राष्ट्र के ऊपर समुचित शासक होना चाहिये।

जनता को अज्ञानान्धकार से छुड़ाकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर करना पुरोहित का कार्य है। जो व्यक्ति ज्ञानवान हैं जागृत हैं, पथ प्रदर्शन करने की क्षमता रखते हैं उन पुरोहितों का कर्तव्य है कि जनता को जागृत करते रहें। सामाजिक राष्ट्रीय शारीरिक एवं आर्थिक खतरों से सजग रखना और कठिनाइयों का हल करने का मार्ग प्रदर्शित करना पुरोहितका प्रधान कर्तव्य है। अन्त:करणमें रहने वाले पुरोहित का कर्तव्य है कि वह विवेक द्वारा शक्तियों पर नियन्त्रण करे और उन्हें कुमार्ग से बचाकर सन्मार्ग पर लगावें।

हे पुरोहित! जाग! राष्ट्र के बारे में जागरुक रह। वेद पुरुष कहता है—"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।" पुरोहित राष्ट्र के सम्बन्ध में जागते रहें-सोवें नहीं। हमारे अन्त:करण में बैठे हुए हे विवेक पुरोहित! जागता रह! ताकि हमारा बल-"क्षत्रिय" अनुचित दिशा मे प्रवृत्त न हो। हमारे देश और जाति का नेतृत्व कर सकने की क्षमता रखने वाले हे सच्चे पुरोहितो! जागते रहो, ताकि हमारी राष्ट्रीय और सामाजिक शक्तियों का अनुचित आधार पर अपव्यय न हो। हे पुरोहित! जाग, हमारे बल पर शासन कर, ताकि हम पुनः अपने अतीत गौरव की झांकी कर सकें।

गरीबी का बल।

(लेखक—कुमारी कैलाशदेवी वर्मा)

जीवन-सामञ्जस्य निर्धारित करने वाले उपकरणों में यद्यपि शक्ति व धन दोनों की ही आवश्यकता है. फिर भी निर्धन मनुष्य भी शक्तिशाली हो सकता है क्यों कि निर्धनता व निर्बलता दोनों पृथक् पृथक् हैं।

"नर हो, न निराश करो मन को" हमारे उद्दीयमान कवियों का कथन है। स्वास्थ्य व शक्ति दैविक अथवा ईश्वर प्रदान शक्तियें नहीं है मनुष्य स्वयं अपने लिये इनका निर्धारण करता है। परन्तु प्राय: भ्रमवश होकर धन को स्वास्थ्य एवं शक्ति का दायक समझ लेता है।

यह ठीक है कि सम्पत्ति होने पर कितनी ही ऐसी बातें अनायास हमको प्राप्त होती हैं जिनकी स्वास्थ्य और शक्ति के लिये अतिशय आवश्यकता होती है और धन होने पर जीवन में ऐसी अनेक सुविधायें भी प्राप्त होती हैं। किन्तु यह भी सर्वथा मान्य है कि स्वास्थ्य और शक्ति के लिये धन के उपयोग की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। धन में कुछ उपयोगितायें होने पर भी स्वास्थ्य और शक्ति के लिये, धन के नाम कलंक पूर्ण है और यह कलंक मिथ्या नहीं है।

सात्विक व संयत-जीवन बिताकर स्वास्थ्य बड़ी सुगमता पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। धनाभिमानियों के शरीर आज निर्बल और रोगी क्यों मिलते? धन हीन मनुष्य स्वस्थ और बलिष्ठ बन सकता है, यदि यह ज्ञात होता और मनुष्यों को इस पर विश्वास होता तो स्वास्थ्य और शक्ति के हताश स्त्री-पुरुष सदा के लिये अपने जीवन की श्री न खो बैठते!

स्वाध्याय आवश्यक है !

जीवन के प्रमुख धर्म कार्यों में स्वाध्याय का स्थान बहुत ऊँचा है । जिस प्रकार शरीर की भूख बुझाने के लिए अन्न आवश्यक है उसी प्रकार बुद्धि की भूख बुझाने के लिए स्वाध्याय है । आहार के अभाव में देह की जो दुर्गति होती है वही दुर्गति स्वाध्याय के अभाव में बुद्धि की होती है । इसलिए सत्साहित्य का अध्ययन करने क लिए हमारे दैनिक जीवन में अवश्य ही कुछ समय निश्चित रहना चाहिए ।

स्वाध्यायके लिए शास्त्रों ने मनुष्यके लिए कितना प्रेरणा पूर्ण आदेश दिया है, इसका अन्दाज पाठक नीचे के प्रमाणों से लगा सकते हैं—

"स्वाध्यायाभ्यसनंचैव वाङ्मयं तप उच्यते ।"
गीता १ ७–१५

अर्थात्—स्वाध्याय करना वाणी का तप है ।

"स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् ।
स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते ॥"
॥ योग १।२८ व्यासभाष्य ॥

अर्थात—स्वाध्याय से योग की उपासना करे और योग से स्वाध्याय का अभ्यास करे। स्वाध्याय की सम्पत्ति से परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।

"त्रयोधर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति ।"
छान्दोग्य २।२३।१

धर्म के तीन स्कन्ध हैं—यज्ञ,स्वाध्याय और दान।

"तपःस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः ।"
—योग २।१

तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह क्रिया योग है ।

"स्वाध्यायान्मा प्रमदः"—श्रुति

अर्थात्—स्वाध्याय करने में भूल मत करो ।

तदहरब्राह्मणो भवति यदहः स्वाध्यायं नाधीते । तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ॥ १ ॥

जिस दिन स्वाध्याय नहीं करता उसी दिन ब्राह्मण अब्राह्मण हो जाता है । इसलिए नित्य-प्रति स्वाध्याय करना चाहिये ।

ये ह वै के च श्रमा हमे द्यावा पृथवी अन्तरेण । स्वाध्यायो हवै तेषां पराकाष्ठा ॥ २ ॥

इस पृथ्वी और द्युलोग के बीच में जो कुछ भी पुरुषार्थ है उसमें स्वाध्याय सर्वोपरि (पराकाष्ठा) है।

यावन्त हवाइमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णा दद-ल्लोकं जयति त्रिस्तावन्तं जयति भूया ॅसं वाक्षय्यं य एवं विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीत् ॥ ३ ॥

—शतपथ ११।५।७

इस धनधान्य पूर्ण समस्त पृथ्वी का दान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे तिगुना पुण्य अथवा और भी अधिक अक्षय पुण्य उस पुरुष को मिलता है जो प्रतिदिन स्वाध्याय करता है ।

यह शास्त्र वचन हमें आदेश करते हैं कि स्वाध्याय नित्य करना चाहिए । अब यह देखना चाहिए कि स्वाध्याय क्या है ? स्वाध्याय शब्द के दो अर्थ किये जाते हैं । (१) स्वयम् अध्ययनम्—अर्थात् अपने आप, बिना किसी दूसरे की सहायता के अध्ययन करना । विचार, चिन्तन, मनन द्वारा सामने उपस्थित सर्वतोमुखी समस्याओं को समझना और उनके सुलझाने का मार्ग तलाश करना । (२) स्वस्यात्मनोऽध्ययनम्—अर्थात् अपने आपका अध्ययन करना । आत्म चिन्तन द्वारा अपने अंदर काम करने वाली दैवी और असुरी वृत्तियों को देखते रहना और आसुरी वृत्तियों को घटाने एवं दैवी वृत्तियों को बढ़ाते रहने का पथ प्रशस्त करना ।

उपरोक्त दोनों ही प्रकार के स्वाध्याय आवश्यक हैं । दोनों के मिलने में ही एक पूर्ण स्वाध्याय बनता है । अपनी आध्यात्मिक, शारीरिक, सामाजिक,

आर्थिक राजनतिक सभी समस्याओं पर एकान्त में अपने आप विचार और चिन्तन करना और वास्तविकता का पता लगाकर उपयोगी मार्ग अवलम्बन करना यही स्वाध्याय का तात्पर्य है।

केवल मात्र किसी धर्म पुस्तक के थोड़ी देर पन्ने पलट लेना स्वाध्याय नहीं है। ऐसे स्वाध्याय से कोई ऐसा ऊँचा लाभ नहीं मिल सकता जिसका संकेत उपरोक्त शास्त्र वचनों में किया गया है। स्वाध्याय का भावार्थ अपनी विचारकता को सजीव करना, हर एक बाह्य और आन्तरिक समस्या को सूक्ष्म दृष्टि से देखना और उसे निष्पक्ष और अपनी स्वतंत्र प्रतिमा द्वारा सुलझाना है। दूसरों के पथ प्रदर्शन से मनुष्य सत्य तक नहीं पहुँच सकता, क्योंकि परस्पर विरोधी विचार वाले शास्त्र और महापुरुष विभिन्न बातों को कहते हैं एक दूसरे के मत का खण्डन करते हैं। ऐसी दशा में यदि मनुष्य के अन्दर विचारता न हो, उचित अनुचित का निर्णय करने योग्य बुद्धि बल न हो तो केवल अन्ध-श्रद्धा के कारण मनुष्य अन्धकार में गिर सकता है। उचित पथ प्रदर्शन करने की क्षमता अन्तःकरण में बैठे हुए सच्चे गुरु में ही है। इस गुरु की वाणी स्पष्ट सुन सकें, उसके संकेतों को ठीक तरह समझ सकें, इसके लिए अपनी विचारकता को जागृत करने की आवश्यकता है।

पुस्तकों की सहायता से या व्यक्तियों की सहायता से यह विचारकता जागृत की जा सकती है। वह अध्ययन है। स्वाध्याय वह है कि स्वयं किसी समस्या पर गंभीरता पूर्वक विचार करके निष्पक्ष निर्णय करके अपने विश्वास का मजबूती से निर्माण करें। ऐसा स्वाध्याय बुद्धि का भोजन है। आत्मोन्नति का मार्ग है। अवश्य ही प्रतिदिन मनुष्य को सच्चा स्वाध्याय करना चाहिये।

अपने को जीतो !

संसार की बाह्य परिस्थितियों पर हम तब तक विजय प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कि अपने ऊपर काबू न करलें। दिन रात क्लेश, विपत्ति, गरीबी, बीमारी, मृत्यु, चिन्ता और पीड़ा का चिन्तन करते करते मनुष्य उन्हीं में तन्मय हो जाता है। दूसरी कोई वस्तु उसके सोचने में नहीं आती, फलस्वरूप अपने आराध्य पदार्थों के अतिरिक्त और कुछ मिलता भी नहीं है।

कितने आश्चर्य और दुख की बात है कि जो सत् है वह असत् में डूबा रहे, जो चित है वह मूढ़ता और जड़ता में पड़ा है, जो आनन्द स्वरूप है वह दुख दारिद्र्य की कीचड़ में से बाहर न निकल सके। इस संसार में कितनी ही आत्माएं अपने वास्तविक स्वरूप से बहुत दूर हट कर जड़ता के अन्धकार में भटक रही हैं, जीवन को एक प्रकार का भार अनुभव कर रही हैं। सृष्टि का एक एक कण चैतन्य आत्मा के आनन्द के लिए परमात्मा ने बनाया है। पर दुर्भावनाओं के कारण हम रसको विषमें परिवर्तित कर देते हैं। खटाई पड़ने से अमृतोपम दूध, फटकर छार छार हो जाता है, इसी प्रकार विपरीत दृष्टिकोण रखने के कारण यह आनन्द से परिपूर्ण जीवन एक कष्ट दायक भार बन जाता है।

हमें अपने ऊपर विजय प्राप्त करनी चाहिए, अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करना चाहिए, अपनी विचार धारा में संशोधन करना चाहिए। जो ऐसा कर लेता है उसकी सारी बाह्य परिस्थितियां अनुकूल हो जाती हैं और हर एक वस्तु तथा परिस्थिति में आनन्द की झांकी होने लगती है।

सहज योग ।

[२]

गत अंक में "सहज योग" की कुछ चर्चा की जा चुकी है। "सादा जीवन-उच्च विचार" का मंत्र सहज योग की जड़ है। कमलपत्रवत, निर्लिप्त, अनासक्त, स्थिति प्रज्ञ, आत्म स्थित की अवस्था भी यही है। अपना दृष्टिकोण भौतिक न रखकर आध्यात्मिक बना लेना और हर बात के ऊपर आध्यात्मिक दृष्टि से सोचना, विचारना और तदनुकूल कार्य करना यही सहज योगी की स्थिति है। सदैव जागरुक रहना, अपने स्वभाव, विचार इच्छा, आकांक्षा, एवं कार्यप्रणाली की बारीक दृष्टि से देखते रहना कि नियत दृष्टिकोण के विरुद्ध कुछ गड़बड़ी तो नहीं हो रही है यही सहज योग का अनुष्ठान है। अपने भीतरी शत्रुओं से, कुविचारों से दुर्भावनाओं से, कुवासनाओं से निरन्तर हर घड़ी लड़ना और सद्भाव, सद्विचार, सत्कामों का आश्रय लेना यही सहज योगी की साधना होती है।

"सहजयोग" इस दृष्टि से सहज है कि उसमें उलटे लटकने या धूनी रमाने या घरबार छोड़ कर विचित्र वेष बनाने या भिक्षाटन करने का झंझट नहीं है। साधारण व्यक्ति की तरह व्यवसाय, रहन सहन, एवं आहार विहार रखता हुआ हर कोई इसे हर अवस्था में साध सकता है। पर उस दृष्टि से कठिन है कि हर घड़ी जागरुक रहना पड़ता है। दिन में आधा या एक घंटा कोई अभ्यास कर लेने मात्र से इसमें सफलता नहीं मिलती वरन् थोड़ी थोड़ी देर बाद आत्म स्थित होकर यह देखना पड़ता है कि कार्य प्रणाली एवं विचारधारा उचित दिशा में चल रही है या नहीं। जब सेनाओं में युद्ध होता है तो सेनापति के सहायक अफसर-पर्यवेक्षक-किसी ऊँचे स्थान पर बैठे हुए दुरबीन लगाकर यह देखते रहते हैं कि हमारी सेना की, और दुश्मन की सेना की प्रगति किस प्रकार हो रही है। यह पर्यवेक्षक सेनापति ही सारी हलचलों की सूचना देते रहते हैं तदनुसार सेनापति अपनी सेना को आगे बढ़ाने तथा दुश्मन को परास्त करने के यथोचित प्रोग्राम बनाता रहता है। इसी प्रकार सहज योग के साधक की बुद्धि, सूक्ष्मदर्शी पर्यवेक्षक की भांति पूरी जागरुकता और सावधानी के साथ यह देखती रहती है कि अपने अन्दर सात्विकी और तामसी वृत्तियों के सेनाओं का कार्य किस प्रकार हो रहा है। इसकी सूचना वह अन्तःकरण रूपी सेनापति को देती है और सेनापति तदनुसार इस साधना समर में विजय प्राप्त करने की स्थिति को देख कर आयोजन करता रहता है। और अन्त में अभीष्ट सफलता प्राप्त कर लेता है।

यह कार्य उतावली का, जल्दबाजी का या हथेली पर सरसों जमा लेने का नहीं है। कर्म का परिपाक होने में समय लगता है। बोया हुआ बीज समयानुसार उगता और फल देता है। अबे में लगाये हुए घड़े उचित अग्नि पाकर नियति अवधि पर पकते हैं विद्यार्थी बहुत समय तक शिक्षाभ्यास करने के उपरान्त स्नातक बनते हैं, बहुत समय तक कसरत करने के उपरान्त ही पहलवान का पद मिलता है। कार्य आरंभ होने से लेकर उसके पूरा होने तक अनेकों बार नाना प्रकार के विघ्न आते हैं। अनेकों वार दुर्दिन देखना पड़ता है और निराशा-जनक स्थिति का मुँह देखना पड़ता है, परन्तु धैर्य पूर्वक सतत् प्रयत्न करते रहने से समयानुसार आवश्यक सफलता प्राप्त हो जाती है।

आरम्भ में ऐसा होता है कि 'सहज योग' का साधक अपने विचार और कार्यों को सात्विक'उच्च पवित्र एवं परमार्थ पूर्ण बनाने का प्रयत्न करता है, पर कोई झोके ऐसे आते हैं कि उसका किया कराया सब गुड़ गोबर हो जाता है। कभी कभी अपना चिर संचित दुस्वभाव ही उबल पड़ता है और लालच के कारण नियत कार्यक्रम से स्खलित हो जाता है। कोई ...

सोचता है, जरासा एक बार थोड़ा सा रसास्वादन करलें, फिर आगे न करेंगे। सामने आये हुए प्रलोभन को देखकर, परसी हुई थाली आगे रखी देखकर मुँह में पानी भर आता है, फिर अभ्यस्त स्वभाव का ववण्डर एक बार पूरे प्रवल बेग से उठ खड़ा होता है उस तूफान में साधना की विधि व्यवस्थायें शिथिल पड़ जाती हैं और साधक पथ भ्रष्ट हो जाता है। लोभ के अतिरिक्त क्रोध से भी ऐसे ही तूफान उठ खड़े होते हैं। साधक सोचता है सब से विनम्र व्यवहार करेंगे, पर कभी कोई व्यक्ति बहुत ही दुष्टता पूर्ण आकरण करके क्रोध का आवेश जगा देता है, उस आवेश में लड़ पड़ने या शठ के प्रति शठता करने को उतारू हो जाना पड़ता है। इन लोभ या क्रोध के आवेशों में उतर जाने के पश्चात् साधक सोचता है मुझसे भूल हुई। वह दुखी होता है, अपनी निर्बलता का अनुभव करता है और सोचता है कि मेरे जैसे दुर्बल मन वाले का इस साधना में सफल होना कठिन है। इस निराशा जनक स्थिति में खिन्न होकर वह अपने प्रयत्नों को छोड़ बैठता है।

कठिनाई या असफलताओं के संबंध में हर साधक को भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि उनका पूर्ण निवारण साधना आरम्भ करते ही नहीं हो सकता। जन्म जन्मान्तरों की बीमारी को एक दिन में दूर नहीं किया जा सकता है। वह क्रमशः और धीरे धीरे ठीक होती है। साइकिल की सवारी करने वाले जानते हैं कि चढ़ना सीखते समय कई बार उन्हें पटक खानी पड़ती है। तैरने वाले जानते हैं कि पानी में पैर देते ही वे नहीं सीखने लगे थे, वरन् अनेक गोते खाने के उपरान्त वे तैराक बने हैं, पढ़ने वाले जानते हैं कि हर दिन उन्हें भूल के कारण अध्यापक की लताड़ सहनी पड़ती है। पर क्या कोई विद्यार्थी यह सोच कर पढ़ना छोड़ देता है कि मुझसे नित्य भूलें होती हैं, नित्य अध्यापक के संमुख दाषी ठहरता है। भूलें करते हुए भी विद्यार्थी निरन्तर अपना अध्ययन जारी रखता है। भूलों को भुला देता है और सफलताओं को स्मरण रखता है। परीक्षा में छात्र को जब ८० प्रतिशत नम्बर प्राप्त होते हैं तो वह फूला नहीं समाता, सब लोग उसकी प्रशंशा करते हैं। इस छात्र ने यद्यपि भूल भी की हैं, २० प्रतिशत प्रश्न उसके बिलकुल गलत किये हैं. जितने सवाल उसने गलत किये हैं उतने अंश में वह भोंदू, मूर्ख,बेवकूफ, लापरवाह, नालायक, दोषी या अपराधी है। पर इस दोषों की मात्रा के होते हुए भी न तो विद्यार्थी स्वयं निराश होता है और न कोई उसकी निन्दा करता है। भूल की अपेक्षा सावधानी का उसने अधिक परिचय दिया। असफला से सफलता का पलड़ा भारी रहा, इतना होना, ऐसा होना, सर्वथा प्रशंसनीय है। इसलिए आधे से अधिक नम्बर लाने वाला, पास समझा जाता है, उसकी पीठ ठोकी जाती है और प्रशंसा की जाती है।

साधकों को इन विद्यार्थियों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जब छोटे बालक, असफलताओं से नहीं डरते, उनको देखकर पस्त हिम्मत, परास्त, निराश, भयभीत, अस्थिर नहीं होते वरन् इन त्रुटियों की परवाह न करके अपना कार्य-क्रम बराबर जारी रखते हैं, तब क्या साधक ऐसा नहीं कर सकते? हर भूल से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और हरबार अधिक सावधानी से कदम उठाना चाहिए। जब गिर पड़ो तो उठ बैठो, धूल झाड़ कर खड़े हो जाओ और फिर अपना कार्य आरम्भ करदो। गिरना लज्जा की बात नहीं है, हर चढ़ने वाले को गिरना पड़ता है। लज्जा की बात यह है कि गिरने से डर-कर पुनः प्रयत्न न किया जाय, पुरुषार्थ को छोड़ बैठा जाय। यह संभव है कि अध्यात्म पथ के यात्री को नित्य कुविचारों का सामना करना पड़े और उसके कार्यों में दोष रह जांय। शत्रु संस्कार घड़ी घड़ी पर आक्रमण करते हैं उसे एक चुनौती समझ कर उनको जरा मूल से उखाड़ डालने का

स्थिर संकल्प करना चाहिए। संकल्प की स्थिरता, गंभीरता, सचाई जितनी मजबूत होगी उतनी ही सफलता प्राप्त होगी। "(१) इन समस्त कुसंस्कारों को जड़ मूल से नाश करके छोड़ूंगा।" "(२) सात्विक की वृद्धि करते करते उसकी पूर्णता तक जा पहुँचूंगा।" यह दो निश्चय, अडिग, अटूट होने चाहिए। इन दोनों लक्षों में पूरी आस्था, निष्ठा, श्रद्धा, दृढ़ता और सत्यता होनी चाहिए। इस निष्ठा को यदि शिथिल न होने दिया जाय तो नित्य प्रति की भूलों को सुधारता हुआ, नित्य प्रति की असफलताओं को परास्त करता हुआ साधक अपने अभीष्ठ ध्येय तक पहुँच कर रहेगा। उसे एक दिन पूर्णता, सिद्धावस्था प्राप्त होकर रहेगी।

जीवन का आदि से अन्त तक पवित्रता में ओत प्रोत करने का दृढ़ निश्चय अन्तरात्मा में होना चाहिए। "मैं सत् हूं, जीवनको असत्य से छुड़ाकर सत्य से परिपूर्ण बनाऊँगा। मैं चित: हूं जीवन को आलस्य और प्रमाद से बचाकर चैतन्य, जागरुक क्रिया शील बनाऊँगा। मैं आनन्द हूं, जीवन में दुःख क्लेश और पीड़ाओं को हटाकर निर्भयता, निश्चिन्तता एवं सुख शान्तिसे ओत प्रोत करूँगा।" इस प्रकार का विश्वास अन्तःकरण में गहराई के साथ जमाना चाहिए। आत्मा को अपने आप में स्थित होने देना चाहिए। राजा तभी तक राजा है जब तक कि वह अपने राज्य सिंहासन पर है जब वह सिंहासन च्युत होगया तो उसका सारा गौरव नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार आत्मा जब अपने आत्मभाव में स्थित है तब मनुष्य सन्त, महात्मा, महापुरुष, नेता, गुरु, पथ प्रदर्शक, जीवन मुक्त, योगी, अवतार, ऋषि, तत्वदर्शी, सिद्ध और महान् है। जब वह इस स्थान से गिर कर शरीर भाव में स्थित हो जाता है, अपने को शरीर समझता हुआ, शरीर भाव से कार्य करता है तब वह कुटिल खल, कामी, नीच, मायावद्ध, भव पीड़ित, स्वार्थी, पापी, घृणित, तुच्छ है, इस स्थिति में थोड़ी और बढ़ोतरी हो जाती है तो जीव की स्थिति और भी भयंकर हो जाती है, तब वह चाण्डाल, पिशाच, राक्षस, एवं असुर हो जाता है।

सुर और असुरों में, देवता और राक्षसों में प्रकृति की एक सी ही वृत्तियां काम करती हैं। सभी स्वार्थ साधना करते हैं। स्वार्थ सम्पादन सभी को अभीष्ट है। आत्मभाव में स्थिति जीव अपने को आत्मा समझता हुआ आत्म कल्याण के लिये सात्विक विचार कार्यों द्वारा अभीष्ट सिद्ध होते देख कर शुभ कर्मों में तत्पर हो जाता है शरीर सुख की परवाह न करते हुए आत्म सुख को प्रधानता देता हुआ, त्याग, तप, दान, परमार्थ, संयम, स्वाध्याय, दया, प्रेम, विनय, उदारता, सेवा, पवित्रता आदि से परिपूर्ण कार्य प्रणाली को अपनाता है और देवता कहलाता है इसके विपरीत जो जीव अपने को शरीर समझता है वह इन्द्रिय सुख, मनोरंजन और शारीरिक लालसाओं का सुख भोगने की इच्छा से भौतिक सम्पदाऐं एकत्रित करने का उद्योग करता है। उसकी अधिकाधिक शक्तियां शरीर को प्रसन्नता देने वाले भौतिक साधनों के जुटाने में लगी रहती हैं। ऐसी स्थिति में श्रम, संचय, भोग और तृष्णा ही उसके प्रधान कार्य रह जाते हैं। वह शारीरिक एवं सांसारिक सुखों की अखण्ड प्राप्ति चाहता है पर यह चाहना किसी को भी आज तक पूरी नहीं हुई। असंभव चाहना के लिए प्रयत्न करना एक भूल है उस भूल को ही भ्रम या माया कहा है। शरीर स्वार्थ की दृष्टि को ही सर्वोपरि समझने वालों को मायाबद्ध जीव कहते हैं। यह माया जब प्रवल हो उठती है। शारीरिक वासनाओं की अति उत्कृष्ट इच्छा से अन्धा होकर जब धर्म मर्यादा की परवाह न करता हुआ मनुष्य भोगों का भण्डार जमा करने पर कमर कसता है तो उसके कार्य शोषण, अपहरण, छल, दंभ, प्रपंच, असत्य, चोरी, हिंसा, बलात्कार, व्यभिचार, अहंकार, क्रूरता, निष्ठुरता से सराबोर हो जाते हैं. यह मनुष्य

नर पिशाच कहे जाते हैं।

देवता, मायावद्ध मनुष्य और नर पिशाच, तीनों के अन्तःकरण में एक ही वृत्ति काम कर रही है स्वार्थ साधना। सभी को अपने सुखकी अपने कल्याण की, अपनी उन्नति की अभिलाषा है। तीनों के कार्य एक ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हो रहे हैं। भेद केवल आत्म स्थिति और शरीर स्थिति का है। जो आत्मभाव में स्थिति है उसका स्वार्थ—'परमार्थ' कह कर प्रशंशित किया जाता है। जो मायावद्ध जीव हैं उनका स्वार्थ—'स्वार्थ' कह कर तिरष्कृत किया जाता है। जो नर पिशाच हैं उनका स्वार्थ—'अनर्थ' है, उसके लिए घोर घृणा प्रकट की जाती है। जन समाज द्वारा विरोध एवं विनाश किया जाता है। परमार्थी परमानंद का अनुभव करते हैं, जीव लालसा और वासना में बेचैन रहते हैं और पिशाच चिन्ता, अशान्ति एवं नाना प्रकार की पीड़ाओं में जलते रहते हैं।

निश्चय ही आत्म स्थिति में आनन्द है और शरीर भाव की स्थिति में दुख है। इसलिए सच्चे सुख का, सच्चे स्वार्थ का सम्पादन करने के लिए आत्मभाव में स्थित होने का प्रयत्न करना चाहिए, यही प्रयत्न 'सहज योग' कहा जाता है। बार बार कठिनाई और असफलता का सामना करते हुए भी इस महान् साधना को जारी रखना चाहिए। दृढ़ निश्चयी देर या सवेर में एक दिन अभीष्ट स्थान पर पहुंच ही जाता है।

———

जिस समाज या जाति में चरित्रता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता वह समाज व जाति प्रति दिन अवनति के मार्ग पर अग्रसर होती चली जायगी चरित्र हीनता उसको जर्जर व अशक्ति करके छोड़ेगी।

× × ×

सामूहिक-प्रार्थना।

(महात्मा गान्धी)

मैं बिना खाना खाए कई दिन तक रह सकता हूं लेकिन प्रार्थना के बगैर तो मैं एक दिन भी नहीं रह सकता। व्यक्तिगत रूप से जहां-तहां प्रार्थना हो रही है, लेकिन सामूहिक प्रार्थना में हमें संकोच क्यों होता है? मनुष्य सामाजिक प्राणी है। यदि नर-नारी मिलकर खा सकते हैं, मिल कर खेल सकते हैं और मिल कर काम कर सकते हैं, तो फिर वे मिल कर प्रार्थना क्यों नहीं कर सकते?

५० वर्षों से मेरा विश्वास सम्मिलित प्रार्थना में रहा है। दक्षिणी अफ्रीका से ही मेरी प्रार्थनाओं में हिंदू, मुसलमान ईसाई और पारसी सम्मिलित हुआ करते थे। भारत में भी हजारों नर नरी मेरी प्रार्थना में सम्मिलित होते आए हैं। मुझे कहा गया है कि वे प्रार्थना करने के लिए नहीं, बल्कि मेरे दर्शन करनेके लिए आते हैं। यदि इसे भी मान लिया जाय, तो भी वे प्रार्थना पर विश्वास करने वाले मेरे जैसे व्यक्ति के साथ सम्मिलित होने के लिए आते हैं। मैं जानता हूं कि मैं अभी ईश्वर के निकट नहीं पहुँचा। मेरी सत्य व अहिंसा की अनुभूति भी अभी तक पूरी नहीं हुई। यदि ऐसा हो जाता तो मुझे भाषण की आवश्यकता न होती। लोग मेरे चेहरे को देख कर ही अहिंसा के महत्व को समझ जाते। मैं कई मर्तबा कह चुका हूं कि यदि एक व्यक्ति की अहिंसा एक दम पूर्ण होजाय तो यह समूचे विश्व के लिए पर्याप्त है। सत्य और अहिंसा की अनुभूति में मुझे जो सफलता प्राप्त हुई है, वह एक मात्र प्रार्थना का फल है।

मानसिक उन्नति के लिए ही प्रार्थना की जाती है। यदि किसी व्यक्ति को प्रार्थना भार प्रतीत हो तो उसे प्रार्थना नहीं करनी चाहिए। ईश्वर किसी व्यक्ति की प्रार्थना व प्रशंसा का भूखा नहीं। वह सब कुछ सहन करता है, क्योंकि वह प्रेममय है।

———

क्या बुढ़ापा दुख दायक है ?

बूढ़ा कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में साधारणतः यह कहा जा सकता कि जिसकी आयु ढल गई है, बाल सफेद पड़ गये हैं वह बूढ़ा है । इसी प्रकार जवान कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में भी यह कहा जा सकता है कि जिसकी नई उम्र है वह जवान है ।

बूढ़े और जवान की यह व्याख्या बहुत अधूरी है । क्योंकि हम देखते हैं कि बहुत से नवयुवक बूढ़े हैं और बहुत से बूढ़ों में जवानी भरी हुई है । स्वास्थ्य की दृष्टि से देखिए जिनकी तन्दुरुस्ती गिर गई है, बीमारी का घुन लग गया है वे जवान होते हुए भी अस्सी बरस के बूढ़ों की सी दुर्दशा में ग्रसित हैं । इसके विपरीत बहुत से ऐसे बूढ़े मौजूद हैं जिनकी उम्र यद्यपि काफी हो चुकी है तो भी शरीर जवान का सा बना हुआ है, इन्द्रियां ठीक काम करती हैं, परिश्रम करने का चाव रहता है और उत्साह एवं स्फूर्ति की तरंगें उनके मन में उठती रहती हैं । देखा जाय तो यह निरोग और उत्साही बुड्ढे वास्तव में जवान हैं और घुन लगे हुए, आलसी नवयुवक वास्तव में बूढ़े हैं ।

अब बौद्धिक दृष्टि से देखिए-कम उम्र होने पर भी जिनकी क्रिया, बुद्धि, प्रतिभा, विचार शक्ति एवं अनुभव शीलता अधिक है वे ज्ञान वृद्ध हैं, किन्तु जो आयु के हिसाब से तो पक गये हैं पर अध्ययन, विवेक एवं अनुभव छोटा है वे बूढ़े बालक समझे जांयगे । संसार में न तो ज्ञानवृद्धों की कमी है और न बूढ़े बालकों की ।

अध्यात्मिक दृष्टि से वे वृद्ध हैं जिनने अपने ऊपर काबू कर लिया है, अपने विचार और कार्यों को एकसा बना लिया है, जिनकी श्रद्धा अडिग और विश्वास अटूट हैं । भले ही वे आयु में छोटे हैं । इसी प्रकार आध्यात्मिक बालक वे हैं जिनका मन वासनाओं की तरंगों में डूबता इतराता फिरता है, थोड़े से प्रलोभन के आगे जो स्खलित हो जाते हैं, भले ही उनके बाल सफेद हो गये हों भले ही साधु या पंडित का चोला पहने हों ।

जिसके पास ऊँचा पद हो वह पदवृद्ध है । जिसके हाथ में सत्ता है, जिसके पास धन है, जिसमें बल, बुद्धि, विद्या, प्रतिभा है, जिसकी पीठ पर जन बल है वह भी अपने अपने क्षेत्र में वृद्ध है । इन वस्तुओं से जो रहित हैं वे इस क्षेत्र के बालक हैं । वृद्धों के आगे बालकों को हाथ बांधे खड़ा रहना पड़ता है । अपना दर्जा नीचा अनुभव करना पड़ता है, आदर और महत्व भी इन्हें उसी अनुपात से मिलता है ।

वैयक्तिक दृष्टि से बूढ़ा वह है जिसका उत्साह ठंडा पड़ गया है, जिसकी सीखने और बढ़ने की प्रवृत्ति नष्ट होगई है । कोई नई बात सीखने या नया कदम उठाने का अवसर आता है तो ऐसे लोग कहा करते हैं इतनी उम्र बीत गई,अब क्या सीखेंगे ? अब थोड़ी उम्र और रही है यह भी कट जायगी । दूसरी ओर वे मनुष्य हैं जो मृत्यु शय्या पर पहुँचने तक अपनी योग्यता और क्रिया शक्ति को बढ़ाते रहते हैं । अभी इसी साल बंगाल की एक ११ पोतों की दादी ने बी० ए० की परीक्षा दी और प्रान्त भर के छात्रों में सर्व प्रथम उत्तीर्ण हुई । इटली के सुप्रसिद्ध विद्वान मेटेन्डसने ६५ वर्ष की आयु में रसियन भाषा का पढ़ना आरम्भ किया और तीन वर्ष में वह उस भाषा का अच्छा जानकार होगया. दार्शनिक जनेहोवा ६३ वर्ष के होगये तब उन्होंने खगोल विद्या का पढ़ना आरम्भ किया । जब एक वर्ष बाद उनकी मृत्यु की घड़ी आ पहुंची तो उन्होंने कहा—"काश, मैं अभी १३ महीने और जीवित रहा होता तो खगोल विद्या में ग्रेजुट हो जाता ।"

बूढ़ा होना आजकल असमर्थ होने के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है । जो अपनी शक्ति सामर्थ्य

क्रिया शीलता, चेतना, जागरुकता, आशा एवं स्फूर्ति खो बैठा है वह बूढ़ा समझा जाता है। बूढ़ों के लिए मृत्यु ही एक मात्र आश्रय है। घर वाले उसकी मृत्यु की आकांक्षा करते हैं, मर जाने पर खुशी मनाते हैं, मृत्यु समय में घंटा घड़ियाल, गाजे बाजे बजते हुए देखकर और मृत्यु भोज के उपलक्ष में हलुआ पूड़ी उड़ाने की धूम देख कर यह आसानी से अनुभव किया जा सकता है कि उस बूढ़े के मर जाने पर घर वालों को खुशी हुई है। जिस स्थिति से मनुष्य खुशी मनाता है उससे प्रतिकूल स्थिति में दुखी होना स्पष्ट सिद्धान्त है। यदि बूढ़े की मृत्यु पर इस प्रकार की खुशी मनाई जाती है तो उसका स्पष्ट अर्थ है कि उसके जीवित रहने से उन्हें दुख होता होगा।

विचारणीय प्रश्न यह है कि बूढ़े में ऐसी क्या बात हो जाती है कि उसकी मृत्यु की आकांक्षा की जाती है और कभी कभी तो वह बुड्ढा स्वयं भी वैसी ही इच्छा करता है। बात यह है कि शक्तियों की वृद्धि एवं स्थिरता की ओर यदि ध्यान न दिया जाय तो वे घटने लगती हैं। अशक्त मनुष्य निःस्वत्व हो जाता है, छूँछ रह जाता है, ऐसी वस्तु को फेंक देने या नष्ट हो जाने के अतिरिक्त और उसका क्या उपयोग हो सकता है। यही कारण है कि "बूढ़ा" मनुष्य आज एक उपेक्षणीय अनुपयोगी एवं छूँछ तत्व समझा जाता है और उसका सम्मान नहीं रहता।

परन्तु वास्तव में बूढ़ा होना ऐसी स्थिति नहीं है जैसी कि आजकल बन गई है। वृद्धि—बढ़ोतरी को कहते हैं। वृद्ध का अर्थ है, बढ़ा हुआ, समुन्नत अधिक समृद्ध एवं सशक्त। ज्ञानवृद्ध, पदवृद्ध, धन-वृद्ध आदि शब्दों द्वारा छोटी आयु के मनुष्यों को बूढ़े मनुष्य की समता दी जाती है। इसमें यही सभ्यता काम कर रही है कि "बूढ़ा" अधिक शक्ति सम्पन्न होता है। जो त्रुटि कम उम्र में रहती है वह वृद्धावस्था में पूरी हो जाती है किन्तु जो लोग ज्ञान आदि की उतनी उन्नति कर लेते हैं जितनी कि वृद्धावस्था तक पहुँच जाने पर ही संभव है, तो उन्हें ज्ञानवृद्ध आदि की पदवी दी जाती है।

विचार पूर्वक देखने से पता चलता है कि बूढ़ा होना तत्वतः एक सम्माननीय स्थिति है, पर आज वह उपेक्षा, तिरस्कार एवं अपमान जनक असहायावस्था बन गई है। इस अवांछनीय हेर फेर का कारण वह निराशा पूर्ण मनोभावना है जिसमें जरासी उम्र ढलते ही मनुष्य ग्रसित हो जाता है। समझने लगते हैं कि शरीर शिथिल हुआ, मृत्यु निकट आई, अब हमें क्या करना है, अब हमसे क्या हो सकेगा। उनके हाथ पैर फूल जाते हैं और निराशा के कारण अपनी संचित योग्यताओं को भी खोकर छूँछ बन जाते हैं।

पका फल अधिक मीठा हो जाता है, बीज का दाना तभी पूर्ण गुण युक्त होता है जब वह पक जाता है। मनुष्य भी अपने आधे जीवन में जब अनुभव संग्रह कर लेता है तब तीसरे पन में पकने लगता है और पूर्णता प्राप्त करने लगता है। उस समय उसका ज्ञान और अनुभव अपेक्षाकृत अधिक परिपुष्ट और महत्वपूर्ण होता है। उस परिपुष्टि के सहारे वह अपने जीवन को अधिक समुन्नत बना सकता है, दूसरों को अच्छा पथ प्रदर्शन कर सकता है। वृद्धावस्था योग्यता की वृद्धि की अवस्था है, सफेद बालों को लोग अपने दीर्घ कालीन अनुभव के प्रमाणपत्र स्वरूप पेश करते हैं। कहते हैं—यह बाल धूप में सफेद नहीं किये हैं। इसका भावार्थ यह है कि इस सफेद बाल वाले बुड्ढे के पास दीर्घ कालीन और ज्ञान मौजूद है।

वृद्धावस्था में शरीर की श्रम शक्ति का कम हो जाना स्वाभाविक है। पर इसी कारण निराश होने का कोई कारण नहीं। बालकों को शारीरिक श्रम करने की योग्यता कम होती है पर इसीकारण

नकी न तो उपेक्षा की जाती है और न मृत्यु की ामना। शारीरिक श्रम शक्ति का कम हो जाना ोई बहुत बड़ी क्षति नहीं है। मनुष्य का मूल्य ारीरिक बल से नहीं आंका जाता, उसका महत्व जेन बातों पर निर्भर है वे वृद्धावस्था में कम नहीं ोती वरन् बढ़ती हैं। इससे स्पष्ट है कि वृद्ध पुरुषों ी उपयोगिता बढ़नी चाहिए, स्थिर रहनी चाहिए।

इस पर भी हम देखते हैं कि आज 'बूढ़ा' होना क अभिशाप के समान है। कारण यही है कि ोग अपनी योग्यताओं, शक्तियों को बढ़ाने और स्थिर रखने की आशा, प्रेरणा और क्रिया को छोड़ देते हैं। शेष जीवन को निराश और उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगते हैं। जो अपने जीवन को जेस दृष्टि से देखता है दूसरे भी उसको उसी दृष्टि े देखने लगते हैं। फल स्वरूप बूढ़ा होना गिरी ्शा का सूचक बन जाता है। चढ़ती उम्र के और ढलती उम्र के, दोनों ही प्रकार के ऐसे बूढ़ों से हमारा समाज भरा हुआ है जो अन्धकार पूर्ण भविष्य के गहरे गर्भ की ओर तेजी से कदम बढ़ाते हुए चले जा रहे हैं।

इन चढ़ती और ढलती उम्र के निराशावादी बूढ़ों के कारण वेचारी वृद्धावस्था बदनाम होती चली जा रही है। अब समय आगया है कि पूज्य-नीय वृद्धावस्था को इस दुर्दशा से बचाया जाय। वृद्ध कहे जाने वाले पुरुष, अपने बुढ़ापे में अपने उत्साह को मन्द न होने दें, अपनी आशाओं को स्थिर रखें, अपनी क्रिया शक्ति को सचेत बनाये रहें। शरीर और मस्तिष्क से सामर्थ्य के अनुसार बराबर काम रें। शेष जीवन की एक एक घड़ी से अधिकाधिक लाभ उठाने की इच्छा रखें। जो ज्ञान और अनु-भव संचित कर लिया जायगा वह अगले जन्म में काम देगा ऐसा सोच कर मृत्यु की घड़ी तक ज्ञान सम्पादन करने, योग्यता बढ़ाने, अनुभव प्राप्त करने, भूलों का सुधार करने एवं अपने अनुभव से दूसरों को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न निरन्तर जारी रखना चाहिए। यदि ऐसा प्रयत्न वृद्ध लोग करते रहें तो बूढ़ा होना दुख की बात न रह कर गौरव की बात होगी।

द्वेषपूर्ण विचार स्वयं तुम्हीं को हानिकर हैं।

(श्रीयुत् महेश वर्मा, हरवर्ट कालिज कोटा)

चित्त में दुःख उत्पन्न करने वाले विचार तरंगों की गति चक्राकार होती है। द्वेष का प्रत्येक विचार ऐसे ही विचारों का मंडल चारों ओर बनाता है और प्रत्येक द्वेषी को हानि पहुँचाता है। मानव के मन से कोई भी विचार तरंग निकल कर पूरा मंडल बना कर पुनः उसी मन में वापिस आकर प्रवेश कर जाता है।

यदि तुम्हारे हृदय में किसी के प्रति द्वेष उत्पन्न हो जाय तो उस घातक भावना को तुरन्त निकालिये अन्यथा वे तुम्हीं को हानि पहुंचाएँगे।

इसी प्रकार जब तुम्हारे अन्तःकरण में किसी के लिए प्रेम एवं आदर के भाव उत्पन्न होंगे तो वे दूसरे के हृदय से टकरा कर तुम्हारे हृदय में पुनः प्रवेश करेंगे। ऐसे विचारों का एक मंडल बन जायगा।

यदि आन्तिरिक दृष्टि से देखा जाय तो हृदय की तिजोरी में सामर्थ्य, समृद्धि, शान्ति के विचार रखने चाहिए। ये रत्न अधिकाधिक बढ़ेंगे। यदि तुम ईर्षा, द्वेष, शंका के शंख घोंघे रक्खोगे, तो ये ही बढ़ कर सम्पूर्ण जीवन को भार-स्वरूप बना देंगे।

वास्तविक शिक्षा।

(ले:—श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती)

शिक्षा का उद्देश्य शिष्यों को भगवान् और व्यक्ति से प्रेम करना सिखाना है। सच्ची शिक्षा वही है जो विद्यार्थियों को सत्यवक्ता, सच्चरित्र, निर्भय, नम्र और दयावान् बनाती है और उन्हें सदाचरण, सादा जीवन, उच्च-विचार, आत्म-बलिदान तथा ब्रह्म-विद्या का पाठ पढ़ाती है।

देवों, असुरों तथा मनुष्यों ने प्रजापति की अध्यक्षतामें शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने आत्म-संयम, उदारता और दया के पाठ पढ़े। यही वास्तविक शिक्षा है।

इन्द्र प्रजापतिका शिष्य बनकर रहा और उसने यह तत्व जाना कि आत्मा अमर, स्वत:प्रकाशमान, तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिकी अवस्थाओं से भिन्न है और वैयक्तिक आत्मा परब्रह्म के साथ एक है। यही वास्तविक शिक्षा है।

शौनकने अपने गुरु अङ्गिरा के चरणों में जाकर इस गूढ़तत्व को पहिचाना कि सत्य पूर्ण ज्ञान और संयम के अभ्यास से आत्म-साक्षात्कार होता है।

मैत्रेयीने ऋषि याज्ञवल्क्यके पाद-पद्मके नीचे बैठ कर यह सीखा कि आत्मा अविनाशी, अनासक्त स्वतन्त्र और विनाश तथा दुःख से मुक्त है। यही वास्तविक शिक्षा है।

नारद मुनि सनत्कुमारके शिष्य थे और उन्हें गुरु ने बताया कि अनन्त ही आनन्द है, सान्त वस्तु में तिलमात्र भी आनन्द नहीं और प्रत्येक को अनन्त को जानने की इच्छा करनी चाहिए। यही वास्तविक शिक्षा है।

उद्दालकने श्वेतकेतुको पढ़ाया 'तत्त्वमसि'—तू वह है यही सत्य है।

तैत्तरेय उपनिषद में वेदाध्ययन के उपरान्त गुरु शिष्योंको निम्न उपदेश देता है—"वेदाध्ययनकी उपेक्षा मत करो। सत्य-मार्गसे विचलित मत होओ। कर्त्तव्य करो। अपनी समृद्धि की उपेक्षा मत करो। वेदों के अध्ययन और अध्यापन की उपेक्षा मत करो। देवो और पितरोंके प्रति कर्त्तव्य की उपेक्षा न करो। माता तेरी देवता हो (मातृदेवो भव), पिता तेरा देवता हो (पितृदेवो भव), अतिथि तेरा देवता हो (अतिथिदेवो भव)। निर्दोष क्रियाएँ करो। सदा शुभकार्य करो। अपने से बड़े ब्राह्मणों को आसन आदि देकर उचित सत्कार करो। श्रद्धा-पूर्वक दान दो, अश्रद्धा से नहीं। प्रसन्नता, नम्रता, भय और दयालुता-पूर्वक दान दो यदि किसी कामके विषय में संशय हो उस अवस्थामें वैसा वर्ताव करो जैसा कि न्याय-बुद्धि रखने वाले कर्त्तव्य-परायण ब्राह्मण करते हैं। यही नियम है। यही शिक्षा है। यही वेदका प्रयोजन है। यही आज्ञा है। इसीका तुम्हें अनुसरण करना चाहिए। यही वास्तविक शिक्षा है।

प्रत्येक चेहरे में भगवान्के दर्शन करने की शिक्षा अपनी आंखोंको दो। सब प्राणियोंमें एकही आत्माके दर्शन करो। उपनिषदोंकी शिक्षायें सुननेके लिए अपने कानोंको शिक्षित करो। अपनी जिह्वाको भगवानकी प्रशंसा करने और सदा मधुर, सच्चे, प्रेम-पूर्ण वचन बोलनेकी शिक्षा दो। अपने हाथोंको दान देने और गरीबों को सेवा करनेकी शिक्षा दो। अपने मनको सदा प्रसन्न और शान्त रहने तथा अमर आत्माका विचार करनेकी शिक्षादो। यही वास्तविक शिक्षा है।

हमारे आजकलके विद्यालय सांसारिक शिक्षा देते हैं। उनमें नैतिक नियन्त्रण और आध्यात्मिकताका अभाव रहता है। विद्यार्थियों में जीवनके उच्च आध्यात्मिक आदर्श नहीं होते। वे अपनी आजीविका के लिए विद्या-ध्ययन करते हैं। वे केवल ऊँची तनख्वाहें पाने के लिए पढ़ते हैं, यह बड़ा शोचनीय विषय है। यह कारण है कि अन्त में वे आध्यात्मिक दिवालिए होकर निकलते हैं।

शिक्षाका उद्देश्य जीवनको सादा तथा विचारोंको उन्नत बनाना होना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थीको यह

मुख्य कर्त्तव्य साक्षात्कार तथा सर्व भूतमैत्री भाव है।

सब विश्वविद्यालयों का वास्तविक कार्य मनुष्य को मनुष्यसे मिलाना होना चाहिए। गीता, उपनिषद, रामायण, भागवत, महाभारत, पातञ्जल योग-सूत्र, ब्रह्मसूत्र, तुलनात्मक धर्म और दर्शन, सब विद्यालयों में पढ़ाए जाने चाहिए। इनका अध्ययन आवश्यक होना चाहिए। नैतिक-शास्त्र, योग, ध्यान मनका नियन्त्रण—इन विषयों पर विद्यार्थियों को क्रियात्मक शिक्षाएं भी दी जानी चाहिए। संस्कृत का अध्ययन आवश्यक होना चाहिए। संस्कृतके अध्ययन के बिना दर्शन के गम्भीर तत्त्व नहीं समझे जा सकते।

कालिजोंके प्रिन्सिपल और प्रोफेसर महानुभावों तथा हाई स्कूलों के हैड मास्टरों का ऊँचे उठे हुए संन्यासिओं और योगिओं द्वारा पथ-प्रदर्शन किया जाना चाहिए, तभी वास्तविक शिक्षा विद्यार्थियोंको दी जा सकती है। यदि प्रतिवर्ष भारत के विद्यालयों से वास्तविक शिक्षा को ग्रहण किए हुँए छात्र बाहिर निकलें तो उज्वल, नवभारत का निर्माण और शान्ति, समृद्धि तथा आनन्दका नूतन युग उपस्थित होगा।

संसारको अध्यात्म-धनके धनी व्यक्तियोंकी आवश्यकता है। जाग्रत आत्माएँ जिन्होंने ज्योति प्राप्त कर ली है, विश्व के लिए वरदान हैं। वे लोगों को सन्मार्ग की ओर ले जावेंगी तथा अज्ञान का समुद्र पार करने में उनकी सहायता करेंगी और अमरत्व तथा अक्षय आनन्द प्राप्त करायेंगी।

भगवान् करे कि आप सबको सत्य-ज्ञान, और वास्तविक शिक्षा प्राप्त हो। संसार वास्तविक शिक्षा-सम्पन्न पुरुषोंसे भरपूर हो। विश्व विद्यालय, कालिज, और स्कूल वास्तविक शिक्षा और संस्कृत के केन्द्र हों। तुम सब शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य और जीवन के लक्ष्य को समझो। शिक्षा-संस्थाओं के अधिकारी वर्ग में दवीय ज्ञान-ज्योति जागे जिससे वे विद्यार्थियों का पथ-प्रदर्शन कर सकें।

निन्दा से दूर रहो।

सम्भाषण कार्य में सबसे बड़ा अवगुण, पर-निन्दा करना है। पर निन्दक मनुष्यों की दशा ठीक उस पागल मनुष्य की तरह होती है जिसके हाथ में एक तलवार देदी जाती है और जो किसी भी मनुष्य को मारने में नहीं हिचकता। निन्दा करने वाले प्रत्येक मनुष्य में कुछ भी नैतिक साहस नहीं रहता वह प्रत्यक्ष में कुछ कहने की हिम्मत नहीं रखता। वह उस कायर शत्रु के समान है जो छिपकर वार करना जानता है।

सिवाय इसके दूसरों की निन्दा करने में यह भी एक नुक़सान है कि वह मनुष्य, जिसकी निन्दा की जाती है अपना दुश्मन बन बैठता है।

जो मनुष्य यह समझते हैं कि हम दूसरों की जब निन्दा किया करते हैं तब वह बात उसके कानों तक नहीं पहुँचती, वे बड़े मूर्ख हैं। ऐसा होना असम्भव है दूसरों की तुम हज़ार तारीफ़ करो, परन्तु यह बात उसके कानों तक नहीं पहुंचेगी, परन्तु जब तुमने किसी की निन्दा की तब याद रक्खो यह बात उसे हवा के द्वारा मालूम हो जायगी।

इस तरह से जिन जिन मनुष्यों की निन्दा की जाती है वे सब दुश्मन बन जाते हैं और अन्त में निन्दा करने वाले मनुष्य की दशा ठीक वैसी ही हो जाती है जैसी कि किसी फुटवाल की जो कि एक जगह से लात खाकर दूसरी, और दूसरी से तीसरी जगह चली जाती है।

इसलिए आध्यात्मिक व्यक्तियों को पर अवगुण अन्वेषण करते रहने और दूसरों को तीर के समान तीखी बातों के मारने से चुप रहना अच्छा है। जहां तक हो सके मुँह की अपेक्षा, आंखों से काम लेना चाहिये।

मिट्टी का चमत्कार।

(डा० रामचरण महेन्द्र एम. ए., डी. लिट्)

"कल कास्टिक लगायेंगे और आँखें पांच छै दिन में बिल्कुल साफ हो जांयगी। लाली भी जाती रहेगी और रोहे भी ठीक हो जाँयगे।"

"कास्टिक टच" किया गया, ग्लोटारगल एवं आजिराल भी डलता रहा पर आंखें दुःखती ही रहीं। रातभर पीड़ा से बालिका रोती रहती बड़ी परेशानी रही। एक दिन आरोग्य मंदिर, गोरखपुर के डाक्टर विट्ठलदास जी मोदी को पत्र लिख रहा था। चलते चलते अव्यक्त रूप से आंखें दुःखने की मेरी परेशानी भी पत्र की एक पंक्ति में प्रकट हो गई। मोदी जी वैसे तो पत्र का उत्तर धीरे धीरे देते हैं किन्तु इस बार पत्र लौटती डाक से प्राप्त हो गया। आपने लिखा था कि दुखती आंख पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग कीजिए और बालिका को मिर्च, मीठे, तेल इत्यादि गरिष्ठ पदार्थों से बचाइये।

"मिट्टी की पट्टी!" क्या इससे कुछ होगा? एकबारगी यही विचार मेरे मनोजगत् में उठा। किंतु डाक्टर की सलाह टालना मैं पाप समझता हूँ अतः दवाई करने की ठानी। प्रयोग मेरे लिए बिल्कुल नया था।

नौकर को आदेश दिया—"बाग़ से चिकनी मिट्टी खोद लाओ। उसमें कंकर पत्थर अधिक न हों। गोबर, मैल, तथा अन्य गन्दी वस्तुएँ पास न न हों, साफ़ स्थान से खोद कर ले आना।"

घर आने पर मैंने प्रथम बार मिट्टी को साफ़ किया। हरी घास के तिनके बीने। फिर चलनी में छान कर कुम्हार की तरह उसमें पानी मिलाकर मरहम जैसा बना लिया। फिर एक बारीक कपड़ा दुखती आंखों पर रख कर मिट्टी के मरहम का एक अस्तर उस पर बिछाया। तत्पश्चात् एक और गीली पट्टी उस पर रख कर बांध दी। मिट्टी की पट्टी दो दो घंटे के बाद बदली जाती रही। मिट्टी को ठन्डी रखने के लिए बर्फ से उसे भिगोता रहा। हवा का उपक्रम भी जारी रहा। पीने के लिए ठन्डा पानी तथा भोजन में दूध, फल, तथा ठन्डा जल दिया जाता रहा।

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब रात्रि में उस दिन बालिका रोई नहीं। सुख की नींद सोई। प्रातःकाल आंख खुली पर सूजन काफ़ी थी। लाली भी बिल्कुल नहीं गई थी। दूसरे दिन भी यही चिकित्सा जारी रही। तीसरे दिन नेत्र ठीक हो गए। वे क्रमशः अपने प्राकृतिक ढंग पर कार्य करने लगे।

उस दिन से मैं प्रकृति माता की मिट्टी की अद्भुत आरोग्य शक्ति का लोहा मानने लगा हूँ। जिनकी आंखें दुखती हैं उनसे मेरा अनुरोध है कि वे अवश्य इस चिकित्सा की परीक्षा कर देखें। दुर्भाग्य से आज अँग्रेज़ी दवाइयों से बीमारी को दबा देने का यत्न किया जाता है किन्तु प्रकृति के उपचार से रोग स्वयं जड़ से नष्ट हो जाता है।

स्पर्श योग का साधन।

(संकीर्तन)

साधक को चाहिये कि वह साधन के कमरे में एक तख्ते पर अच्छा कोमल गद्दा लगाले और दूसरे तख्तेको नंगा रहने दे। पहिले कोमल गद्देपर एकान्त में चित लेट रहे। सारे ध्यान को गद्दे के स्पर्श पर एकत्र करदे। चाहे तो किसी भी मन्त्र का जप कर सकता है। बिना हिले गद्दे पर उतनी देर पड़ा रहे जितनी देर में शरीर करवट बदलने के लिये आकुल हो उठे। उस समय गद्देका स्पर्श अप्रिय प्रतीत होगा। वहां से उठकर तख्ते पर जाकर लेट रहे और संकल्पके द्वारा अनुभव करनेका प्रयत्न करे कि तख्ते

का स्पर्श भी गद्दे के समान कोमल है। तख्ते से हटने पर पुनः गद्दे पर आ जाना चाहिये और उसमें तख्ते की कठोरता की भावना करनी चाहिये। धीरे धीरे इस अभ्यास को बढ़ाना चाहिये।

थोड़े दिनों में अभ्यास हो जाने पर गद्दे और तख्ते के स्पर्श का अनुभव इच्छानुसार विनियमित हो जाया करेगा। जब ऐसा हो जावे तो गद्दे के ऊपर अच्छी धुनी हुई रुई या पुष्प बिछालो और तख्ते को हटाकर पृथ्वी पर छोटी छोटी कंकड़िया डाल लो। पूर्वोक्त रीति से दोनों में एक दूसरे के स्पर्श का अनुभव करने का प्रयत्न करो। इसका परिणाम यह होगा कि साधक के लिये पुष्पों पर या कांटों पर शयन करना समान हो जावेगा।

स्पर्श योग के साधक को फाल्गुन के महीने से केवल कौपीन धारण कर लेना चाहिये। दूसरा कोई वस्त्र न रखे। वृक्षों के नीचे ही रात्रि दिन रहे। गर्मी में धूप और वर्षा में जल का सहन करे। ऐसा करने से जाड़े में शीत का भी सहन हो जायगा। रहने के लिये गुफा,कुटी, छप्पर कुछ न बनावे। शरीर में तैल न लगावे। केश कटावे नहीं। मिट्टी मलकर स्वच्छ कर लिया करे। स्पर्श योग का साधन तपस्या है। शीतोष्ण एवं मृदु कठिन सब प्रकार के विषय स्पर्शों को बदलते हुए त्वक् पर विजय प्राप्त करना है निरन्तर अभ्यास से जब त्वगेन्द्रिय पर विजय हो जायगी तो कोई भी स्पर्श ज्ञात न होगा। इच्छा करने पर शीत भी उष्ण एवं उष्ण भी शीतका अनुभव देगा। इस तितिक्षा और भावना के फल स्वरूप अद्भुत एवं दिव्य स्पर्शोंकी जागृति होगी। अकस्मात् सुखकर स्पर्शों का अनुभव होने लगेगा। साधक को प्रलुब्ध होकर उन्हीं में स्थित रहने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। निरपेक्ष रहकर अपनी तितिक्षा को प्रबल करते जाना चाहिये। फलतः मन की शक्ति क्षीण हो जायगी और साधक को अन्तःस्पर्श प्राप्त होगा। यहां वह परमानन्द का अनुभव करेगा।

तमोगुण से विपत्ति।

(योगी अरविन्द)

जिस साधक में तमोगुण की प्रधानता रहती है उसे दो प्रकार की विपत्ति में फँसने की सम्भावना रहती है। सबसे पहिले साधक के हृदय में उठता है कि—मैं दुर्बल, पापी, घृणित, अज्ञानी, अकर्मण्य हूं। जिस किसी को मैं देखता हूं सभी मुझसे ऊँचे दिखाई देते हैं। मैं सबसे नीच हूं, भगवान को हमारी आवश्यकता नहीं। भगवान मुझे अपनी शरण में लेकर क्या करेंगे? मानों ईश्वर की शक्ति परिमित है और अवस्था विशेष के ऊपर निर्भर करती है और वह उक्ति मिथ्या है कि वह गूँगे को बोलने की शक्ति प्रदान कर सकता है और लूले को चलने की शक्ति दे सकता है।

दूसरे यदि साधक को थोड़ी बहुत शान्ति मिल गई तब उसी का आनन्द उपभोग कर वह मन में सोचने लगता है कि चलो सारा प्रपञ्च दूर हुआ, मुझे शान्ति मिल गई। इस प्रकार कह कर सब प्रकार के कर्मों से मुंह मोड़ कर आनन्द करने लग जाता है। साधक को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह भी परब्रह्म का अंश है और आदि शक्ति उसके हृदय में अब स्थान करके उसका संचालन करती है। सर्व शक्तिमान भगवान की लीला तरह तरह की होती है। किसी एक लीला के परवश होकर साधक को उदासीन होकर बैठ रहना सदा अनुचित है। वह जो कुछ करता है सब उसकी आनन्द लीला है। उसे उत्पात या और कुछ समझना सर्वथा भूल है। पर जब तक किसी तरह का अहंकार विद्यमान रहता है तब तक इस तरह की धारणा का उत्पन्न होना सम्भव नहीं है। कर्म बन्धन के काटे जाने पर भी हमें तो कर्म करना ही होगा।

'अखण्डज्योति' का भूत और भविष्य।

'अखण्ड ज्योति' का आध्यात्मिक मिशन विगत वर्षों से अपने वर्तमान स्वरूप में कार्य रहा है। इस समय में क्या कार्य हुआ यह जानने की परिवार के हर एक सदस्य को जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। जैसे किसी घर की स्थिति की समुचित जानकारी उस घर में रहने वालों को होनी आवश्यक है उसी प्रकार अखण्डज्योति के परि-जनों को अपने आध्यात्मिक घर की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। इसलिए नीचे की पंक्तियों में अब तक के कार्य पर संक्षिप्त दृष्टि डाली जा रही है।

अखण्डज्योति के संपादक का घर आगरा होने के कारण कई सुविधाओं की दृष्टि से आरंभ आगरा ही किया गया था, परन्तु जिन महात्माओं की आत्मिक प्रेरणा से यह मिशन चलता है उनका आदेश हुआ कि—"उर्वर भूमि में ही अच्छी खेती हो सकती है। कल्प कल्पान्तरों से आध्यात्मिक विभूतियों का अतुलित भण्डार जहां जमा होता रहा है वही पुनीत मथुरापुरी इस कार्य के लिए उचित क्षेत्र है। वहां प्रकट और अप्रकट रूप से आत्मिक जगत की सर्वोच्च विभूतियों का आवागमन बना रहता है उनका चरण प्रसाद प्राप्त करते रहने से यह पुण्य कार्य अधिक सुपल्लवित होगा।" इस आदेश के अनुसार अपने घर पर रहने से मिलने वाली सुविधाओं को छोड़ कर "अखण्ड-ज्योति" को मथुरा लाया गया। आरम्भ के एक वर्ष में यह कार्य आगरा रह कर पश्चात् मथुरा चला आया और तब से अब तक नियमित रूप से यहीं है।

अखण्ड-ज्योति पत्रिका का देश के कोने कोने में प्रसार हुआ है। गोरखपुर के "कल्याण" को छोड़ कर एक भी धार्मिक पत्र इसकी बराबर प्रचलित नहीं है। भारतवर्ष का एक भी प्रान्त ऐसा नहीं है जहां पर्याप्त संख्या में उसकी पहुंच न हो। भारत से बाहर भी कई देशों में वह जाती है। जो व्यक्ति इसे मँगाते हैं वे भार स्वरूप नहीं वरन् एक एक पंक्ति का मनन करने की दृष्टि से मँगाते हैं। यही कारण है कि यदि कभी इसके प्रकाशन में एक सप्ताह की भी देर हो जाय तो पूछ ताछ के सैकड़ों पत्र आ जाते हैं। यहां से दो बार जांच कर ठीक समय पर हर महीने पत्रिका भेजी जाती है, तो भी जिन किन्हीं का अंक रास्ते में खो जाता है वे उसे प्राप्त करने के लिए पूरा प्रयत्न करते हैं, कोई कोई तो उत्सुकता की अधिकता के कारण अंक मिलने की शिकायत बड़े कटु शब्दोंमें भी करते हैं। यह कटु शब्द किसी दुर्भावना के नहीं वरन् उस अंक की प्राप्ति संबंधी उत्सुकता के प्रतीक होते हैं। जिनकी फाइलों के कोई पुराने अंक गुम हो जाते हैं वे कभी कभी एक एक रुपया प्रति अंक देकर भी उन अंकों को प्राप्त करना चाहते हैं। यह सब बातें प्रकट करती हैं कि पाठक अखण्ड ज्योति को ध्यान पूर्वक पढ़ते हैं और उसका महत्व अनुभव करते हैं।

गत ७ वर्षों में लाखों व्यक्तियों ने अखण्ड-ज्योति का आध्यात्मिक संदेश सुना है। इससे लोगों के व्यवहारिक जीवन में असाधारण परिवर्तन हुए हैं। सैकड़ों व्यक्तियों को हम स्वयं जानते हैं जिनके जीवन की दिशा बिलकुल बदल गई। कुछ से कुछ हो गये। हजारों व्यक्ति ऐसे हैं जिनके परिवर्तन संबन्धी समाचार हम तक नहीं भेजे गये हैं पर निश्चित रूप से उनका दृष्टिकोण अधर्म से हट कर धर्म में आयोजित होगया है। यह प्रगति बड़ी तीव्र गतिसे चल रही है। अखण्ड-ज्योति को बाँचने वाला अपने अन्दर एक परिवर्तन अनुभव किये बिना नहीं रह सकता। कारण यह है कि एक एक पंक्ति का एक एक अक्षर अत्यंत सचाई और तपः पूत मनोवस्था में लिखा जाता है। लेखक के गहन अन्तः

देश में से निकले हुए भाव पाठकों के हृदयों में बहुत गहराई तक प्रवेश कर जाते हैं। कुछ अभागों को छोड़ कर शेष सभी पाठक जिनने एक बार इस पत्रिका को अपना लिया फिर छोड़ता नहीं। हर वर्ष नियमित रूप से पाठक बना रहता है।

गत अंक में यह मालूम हो चुका होगा कि गत ६ वर्ष लड़ाई के कारण पत्र पत्रिकाओं के लिए मृत्यु तुल्य संकट के समय थे। उस समय में हाथ का कागज बनाने की एक अनौखी तरकीब प्रभु कृपा से निकल आई। हाथ के कागज पर छपी पत्रिका और पुस्तकों का वाह्य कलेवर खराब होते हुए भी पाठकों ने उसे अपनाया। घाटे की पूर्ति के लिए इस ज्ञान यज्ञ की सहायता में पाठकों ने यथाशक्ति दान भी दिया। इस प्रकार वह संकट टल गया। अब भी कागज सम्बन्धी कड़े कन्ट्रोल कायम हैं, पृष्ठ बढ़ाने और अधिक संख्या में छपाने के लिए सुविधा नहीं है, कागज और छपाई में साधारण समय की अपेक्षा तिगुनी चौगुनी मँहगाई है। पत्रिका अब भी घाटे से चल रही है। तो भी ऐसा प्रतीत होता है कि अगले वर्ष यह कठिनायां कम हो जायंगी। और पत्रिका अनेक दृष्टियों से बहुत आगे बढ़ जायगी।

सं० २००१ के आरम्भ होते ही 'अखण्ड-ज्योति' कार्यालय में "कर्म योग विद्यालय की" स्थापना की गई थी, जिसमें आध्यात्मिक दृष्टिकोण के आधार पर व्यवहारिक जीवन को स्वर्ग के समान समृद्ध एवं समुन्नत बनाने की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक शिक्षा देने का आयोजन किया गया। शिक्षा की फीस, रहने का मकान किराया, चारपाई, तेल, बत्ती, पुस्तक, स्टेशनरी आदि का खर्च छात्रों पर नहीं पड़ता था। विद्यार्थियों को केवल मात्र भोजन व्यय अपने पास से खर्च करना पड़ता था। शिक्षा देने का कार्य आचार्य जी के हाथ में था। इस विद्यालय में करीब ५ छात्रों ने शिक्षा पाई। जिसका बड़ा ही उत्तम परिणाम रहा। इन छात्रों के जीवन में जो आशातीत परिवर्तन हुए उसकी एक स्वर से सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। यह अपने ढंग का अद्भुत विद्यालय यद्यपि इस समय विशेष कठिनाई के कारण कुछ समय के लिए स्थगित है परन्तु निकट भविष्य में पुनः अत्यन्त सुचारु रूप से उसे चलाने की तैयारी की जा रही है।

व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने के लिए पाठकों के लिए पत्र व्यवहार द्वारा सदा ही समुचित पथ प्रदर्शन किया जाता है। इस प्रकार व्यक्तिगत समस्याओं के सम्बन्ध में लग-भग १०००० पत्र प्रतिवर्ष आते हैं। इन पत्रों के उत्तर में जो पथ प्रदर्शन मिलता है उससे असंख्य पाठकों का जीवन निरन्तर आनन्दमय स्थिति की ओर अग्रसर होता रहता है।

इस वर्ष कुछ उत्तम जड़ी बूटियों के मिश्रण से दो रसायन बना कर बिना मूल्य दिये गये जिसमें से ओज वर्धक रसायन का परिणाम बहुत ही सन्तोष जनक रहा। लग-भग एक दर्जन पागल या अर्ध विक्षिप्तों के ठीक हो जाने का समाचार मिला है, अनेकों की बुद्धि, रचनाशक्ति तथा स्मरण शक्ति में असाधारण उन्नति होने की खबर है। गर्भ पोषक रसायन का परिणाम नौ मास पीछे मालूम होता है आशा है कि उसका परिणाम भी वैसा ही संतोष प्रद रहेगा जैसा ओजवर्धक का रहा है। अब यह दोनों औषधियां समाप्त हो गई हैं। संभवतः अगले वर्ष फिर उन्हें बनाया जा सकेगा।

उच्चकोटि के विद्वानों का अखण्ड-ज्योति में निरन्तर आना जाना बना रहता है। इन विद्वानों को शक्तियां मनुष्य जाति की वर्तमान समस्याओं को सुलझाने में प्रयुक्त हों इस उद्देश्य से लम्बे-विचार विनिमय होते रहते हैं। उस विचार विनिमय के फल स्वरूप अनेकों उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखे गये हैं, जो विभिन्न स्थानोंसे प्रकाशित हुए हैं। पत्र पत्रिकाओं

सिद्धान्तों के प्रसार में लिखे गये हैं जिनका प्रचार अखंड-ज्योति करती है। इस प्रकार जहां जनता को अखंड-ज्योति द्वारा जीवन को सात्विक बनाने के लिए तैयार किया जाता है वहां इस मिशन द्वारा अनेकों विद्वानों को इसी दिशा में सोचने, लिखने, बोलने और कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस दिशा में भी आशातीत सफलता मिली है। पचासों विद्वान अपने अपने क्षेत्र में अपने अपने ढंग से सात्विकता का प्रचार करने में अपनी शक्तियों को उत्साह पूर्वक नियोजित कर रहे हैं।

इस प्रकार की एक नहीं अनेकों प्रवृत्तियां मनुष्य जाति में मनुष्यता उत्पन्न करने के लिए विभिन्न मार्गों से चलाई जाती हैं। प्रत्येक दिशा में जो सफलताऐं प्राप्त होती हैं आशा से बहुत अधिक होने के कारण यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि प्रभु अपना काम आप करते हैं, उनकी कृपा ही सफलता है।

अब अगले साल के लिए विशाल कार्यक्रम हमारे सामने पड़ा है, जिनमें से कुछ मुख्य कार्य इस प्रकार हैं—

(१) जीवन को समुन्नत एवं समृद्ध बनाने की नियमित शिक्षा घर घर में पहुंचाने के लिए पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा देने का कोर्स लिखना उसे छपाना और "दिव्य जीवन पत्र व्यवहार विद्यालय" की सुव्यवस्थित शिक्षा योजना चलाना। इस विद्यालय में सम्मिलित होने वाले घर रहकर भी वह ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे जो उन्हें यहां आकर शिक्षा प्राप्त करने पर मिलता। इस विभाग के छात्रों को पत्र व्यवहार द्वारा शका समाधान तथा उलझी गुत्थियों को सुलझाने की पूर्ण सुविधा रहेगी।

(२) अखण्ड-ज्योति का प्रेस स्थापित करना जिससे आवश्यक साहित्य के प्रकाशन की सुविधा रहे।

(३) एक विद्यालय स्थापित करना जिसमें सभी स्थिति और आयु के छात्र सांसारिक जीवन को समृद्ध बनाने वाली "शिक्षा" और आत्मिक जीवन को आनन्दमय बनाने वाली "विद्या" को समुचित रूप से प्राप्त कर सकें।

(४) श्री मद्भागवत गीता पर एक अत्यंत सुविस्तृत भाष्य करना। गीता में मानव जीवन की हर गुत्थी को सुलझाने योग्य पर्याप्त बीज मन्त्र हैं। उन मन्त्रों को शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक आधार पर इस प्रकार उपस्थित किया जायगा कि अकेले इस ग्रन्थ को पढ़ लेने से ही संसार के समस्त शास्त्र और धर्मग्रन्थों को पढ़ने का लाभ मिल जाय। गीता का यह भाष्य लगभग दस हजार पृष्ठोंका होगा। अखंड-ज्योति सम्पादक के अगाध ज्ञान और असाधारण स्वाध्याय का इस ग्रन्थ से पता चलेगा। यह भाष्य १८ बड़ी जिल्दों में समाप्त होगा।

(५) स्वाध्याय शिविर स्थापित करना। इस शिविर में साधु सन्यासी पुरोहित पंडित,गुरु,पुजारी, महन्त आदि धर्म जीवी व्यक्तियों को 'नर की पूजाही नारायण की पूजा' है। इस आधार पर स्वाध्याय कराके उन्हें लोक सेवाके लिए प्रस्तुत किया जायगा। वे जगह जगह फैल कर गौ रक्षा,धर्म रक्षा,पाठशाला, व्यायामशाला,पुस्तकालय,चिकित्सालय आदि सेवा संघों का स्थापन एवं संचालन करेंगे। और इस प्रकार ईश्वर की सच्ची पूजा में प्रवृत्त होंगे।

(६) प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना। जिसके द्वारा जनता को रोग निवारण करने तथा स्वास्थ सुधारने के लिए आवश्यक सलाह तथा चिकित्सा की सुविधा हो। रोगियों को मथुरा आकर चिकित्सा कराने की भी सुविधा रहें तथा पत्र व्यवहार द्वारा चिकित्सा का भी आयोजन हो।

आगे आने वाले समय में इन कार्यों को करने का आयोजन है। यह सब कार्य बहुत ही कठिन है और विशाल आयोजन की अपेक्षा रखते हैं।

साधनों का अभाव होते हुए भी हमारा विश्वास है कि परमात्मा अपने काम को आप पूरा करेगा।

———

पतिवृत योग की सिद्धि और साधिका ।

(राजकुमारी रत्नेश कुमारी "नीरांजना")

गत अङ्क में मेरे लघु लेख पर बहुत से महानुभावों की दृष्टि पड़ी होगी। यह भी उसी से सम्बन्धित है। इसमें मैंने यह विचारने का प्रयत्न किया है कि पतिव्रत योग की सिद्धि और साधिका की योग्यता कम से कम क्या होना चाहिये ? यदि पाठक पाठिकाओं ने उक्त लेख को मनन पूर्वक पढ़ा होगा तो वे यह बिना बतलाये ही समझ गये होंगे कि इस योग की सिद्धि तो यही है जो और सब योगों की अर्थात् आत्मा का परमात्मा से अविच्छिन्न सम्बंध का ज्ञान तथा उसका अन्तरतम् से निरन्तर सहज भाव से अनुभव। अब साधिका की योग्यता पर विचार करें। वैसे तो गीता में कथित दैवी सम्पत्ति के जितने ही अधिक गुण साधिका उपार्जित कर सके इस पथ में सहायक ही होंगे पर मैं तो उन्हीं गुणों की गणना करूँगी जो कि साधिका के हेतु अनिवार्य अथवा अत्यावश्यक हैं।

आर्य धर्म के मूल तत्वों पर विश्वास, (ईश्वर का सर्व व्यापकत्व, उसकी न्याय शीलता, आत्मा की अमरता आदि) उक्त पथ पर जो देवियां चली हैं उन पर श्रद्धा तथा उनके चरित्र का अनुशीलन, मनन, उनके असाधरण, दिव्य कार्यों पर विश्वास और ये विश्वास कि जब आत्मा का परमात्मा से योग हो जाता है तब कोई भी उसके हेतु कार्य असम्भव अथवा असाध्य नहीं रहता, इस पथ के महत्व को समझना, तथा इसके हेतु बड़े से बड़ा स्वार्थ त्याग करने को सर्वदा प्रस्तुत रहना, पति को ईश्वर की प्रति-मूर्ति मान कर श्रद्धा रखना उसके कुविचारों को हटाने का तन मन से पूर्ण प्रयत्न करना, पर श्रद्धा तथा इस भावना को न्यून न होने देना, विवाहकाल की प्रतिज्ञाओं को जानना, उन पर मनन तथा उनकी पूर्ति का पूर्ण प्रयत्न करना। इस विषय में महाकवि हरिऔधजी की निम्न पंक्तियाँ कम महत्व पूर्ण अथवा कम विचारणीय नहीं हैः—

भरी बात में हो बड़ी ही मिठाई,
लगी किन्तु होवे कलेजे में काई।
अगर स्वार्थ बू प्यार में हो समाई,
दुई की झलक हो दृगों रंग लाई॥
भला है न तो ब्याह मण्डप में आना,
भरे लोग में नेह गांठें लगाना।

सात्विक सहायताऐं।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए निम्न सहायताऐं प्राप्त हुईं। अखण्ड-ज्योति इन महानुभावों के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

५०) पं० ऋषीरामजी शुक्ल, शाहपुर।
८) श्री० गोवर्धनदास मोदानी, बम्बई।
५) कुँ० मनबोधन सिंहजी स०इ० पुलिस, श्रीनगर।
५) श्री अम्बाप्रसाद जी भटनागर पुवाँया।
३।) श्री० ललिताप्रसाद जी मिश्र मंडला।
३) श्री० बहादुर सिंह जी छतरपुर।
२) श्री० ठाकुर प्रसादसिंहजी नौतनवाद बाज़ार।
२) श्री० सरदारमल जी दुगड़, नागौर।
२) श्री० सुखवासीलाल जी भरथना।
२) गोस्वामी रामेश्वर गिरी, बगुलामठ।
२) श्री० रामलाल जी मलिक, करांची।
१) हरकरण सिंहजी आदमपुर वाले, अहमदाबाद।
१) श्री० हरीदासजी, गाजियाबाद।

भक्ति ही आनन्द का मार्ग है।

(ले०—ब्रह्मचारी श्री प्रभुदत्तजी शास्त्री, बी. ए)

अपने अभीष्ट स्थान पर पहुंचने के लिये हमें उसका मार्ग खोजना पड़ता है और फिर उसी मार्ग द्वारा हम वहां पहुँचते हैं। बिना मार्ग के ईप्सित लक्ष्य की प्राप्ति होना अनिश्चितसा है । आनन्द हमारा अभीष्टतम साध्य है अतः उसकी प्राप्ति के लिये कौन कौन से मार्ग हैं, यह जानना भी आवश्यक है। जान कर उस मार्ग पर तत्परता से चल पड़ने से ही हम अपने लक्ष्य को पा सकते हैं। चलते चलते चींटी भी महान् पथ को पार कर लेती है परन्तु बिना चले गरुड़ भी उद्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँच सकता।

वास्तव में सुख और आनन्द का एक ही लक्ष्य है, स्थायी, व्यापक अधिक सुख को ही आनन्द समझना चाहिये। सुख की प्राप्ति के लिये ही मनुष्य मात्र लालायित है । परन्तु आश्चार्य नहीं है कि लाख चाहने पर भी सुख-निर्बाध सुख नहीं मिलता।

श्रुति भगवती की आनन्दमयी बाणी में—"आनन्दाद्धयेन खल्विमानि भूतानि,जातानि आनन्देन जानाति जीवन्ति।" आनन्द से ही सब प्राणी जन्मते हैं और आनन्द के लिये ही जी रहे हैं। हमारे आत्मा का स्वरूप आनन्द ही है । फिर भी हम आनन्द की न्यूनता अनुभव करते हैं, यही कारण है कि हम आनन्द का मार्ग प्राप्त करने को उत्सुक होते हैं । वेदान्त की परिभाषिक शैली में हमारे पास दो प्रकार की दृष्टियां हैं,एक व्यावहारिक दूसरी पारमार्थिक। जब हम व्यावहारिक दृष्टि से देखते हैं तो संसार का स्थूल या मूर्त रूप, दुःख और जब पारमार्थिक दृष्टि से देखते हैं तो मत्, चित् आनन्दघन के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दृष्टि नहीं पड़ता। निदान यह सिद्ध हुआ कि यदि हम दो में से पारमार्थिकी दृष्टि को प्राप्त कर सकें तो निश्चय ही अपने गन्तव्य धाम आनन्द को प्राप्त होंगे। यह सूर्य के प्रकाश के समान ध्रुव सत्य है कि हमारा आत्मा आनन्दघन है । उसी को पाकर हमको कृत कृत्य होना है। "प्रज्ञान मानन्दं ब्रह्म। अयमात्मा ब्रह्म।"

सत्संग, भजन, ज्ञान, कर्म, उपासना आदि आदि मार्ग सभी आनन्द स्वरूप 'स्व' की ओर लक्ष्य करते हैं। सबसे नवीन और सरल, आनन्द का मार्ग भक्ति माना गया है । भक्ति उस क्रिया का नाम है जो आत्मा के महान् गुण आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करादे। घर में कितना ही खजाना गढ़ा हुआ रक्खा रहे, जब तक घर वाले को उसका ज्ञान न हो तब तक वह उस धन का धनी नहीं बन सकता । इसी भांति हमारी आत्मा रूपी आनन्द-निधि स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर रूपी घर में गुप्त-अज्ञात् रक्खी है। उसको प्राप्त करने के लिये हमें बद्ध परिकर होना चाहिये, तभी हमको उसकी प्राप्ति सम्भव हो सकती है।

आचार्य श्री शंकर भगवान् भक्ति की व्याख्या "(स्व स्वरूपातु-सन्धानं भक्ति रित्यभिधीयते) स्व स्वरूप का अनुसंधान भक्ति है" इस प्रकार करते हैं। अन्य सब साधनों का भी यही लक्ष्य है कर्म के द्वारा हृदय को शुद्ध करके पवित्र अन्तः करण से भगवान की प्रार्थना, उपासना, स्तुति करना ही भक्ति है । यह भक्ति ही आनन्द का राज मार्ग है, जितने जितने हम दयामयी भक्ति के कृपा पात्र बनते जांयगे उतने ही आनन्द के मार्ग के पथिक बन जांयगे । इसमें किंचित भी सन्देह नहीं है। पारमार्थिक दृष्टि को स्थायी करने के लिये भक्ति ही अमोघ साधन है।

दीपक का आत्म निवेदन

(रचियता—श्री० शशिनाथजी तिवारी)

मिट्टी की सूनी राशि को जब उस चक्र-भ्रमण में मिला प्रलय ;
तब कुंभकार के कुशल करों से भू पर मेरा हुआ उदय।
अपने स्वजातियों से हटकर मैं एक कृषक गृह में आया ;
मुझमें कृपालु वर्तिका पड़ी ; मैं गया स्नेह से नहलाया !

मैं दीपक था, मेरे प्राणों में सहज एक उमड़ी ज्वाला ;
मेरी पीड़ा की लपटों से वह जगमग हुई कृषक-शाला।
मेरा मन उसकी ज्योति-किरण से कन-कन के घर में बिखरा ;
उस दिन से मेरी लहरों में कितनों का जीवन-मरु निखरा।

मैं भंगुर छोटे जीवन को आया अनंत पथ में रखने ;
मैं रज का कण, बैठा न रहा, बढ़ चला मृत्यु से यों लड़ने।
क्या हर्ज, मुझे लखकर अंबर के ये जलते तारे न हँसे !
बस, यही बहुत, कुछ भोले मुख हैं मुझे देख बढ़ते विहँसे।

उस थके, पुराने गर्द भरे पथ से चलन न मुझे भाया !
मैं रज-नंदन, भू में न रहा, इस ऊर्ध्व लोक तक चढ़ आया।
मैं हिल-डुल कर हूँ हुआ जीर्ण, पर धन्य आज वर्तिका जली ;
तारों से मैंने रची होड़ मेरी यह आशा अमर पली !

छोटा जीवन, मैं था अलीक, थी अरमानों की मची धूम ;
उस श्याम बदन के भीतर कितने स्वप्न रहे थे मधुर झूम।
मैं उन सपनों के लिये चला, उपहार अन्त में अपनाया ;
फिर कौन देश का वासी मैं ? है किधर चली मेरी काया !

था सका आँक कोई ज्ञानी इतना अनुपम विकास मेरा ?
है खला न किसके हृदय बीच ज्वाला से यह विलास मेरा ?
जग देखे आंखें खोल-खोल, यह प्रलय-जन्म, यह प्रलय-हास ;
मैं उस असीम घर में आया, जिसमें था मेरा मधु-विकास।

—किशोर